

मानव धर्म के प्रचारक—

भारतीय संत

लेखक
हरीश रायज़ादा एम० ए०

भारती भवन
अलीगढ

सम्पादक

मुरारीलाल एम० ए०

भूमिका

भारत के धार्मिक जीवन में दो धाराएँ हमेशा से चलती आयी है—लौकिक और वैदिक। एक ओर धर्म का शास्त्रीय अध्ययन है तो दूसरी ओर धर्म का लोकप्रिय स्वरूप। सन्त लोग दूसरे रास्ते पर चलने वाले थे। उनकी अपनी अनुभूति इतनी गहरी थी कि उसके आगे शास्त्र और पंडिताऊ ज्ञान फीके पड जाते थे। कबीरदास ने कहा है कि 'तू कहता है कागद लेखी, मै कहता हूँ आँखो देखी।' लोक जीवन पर सन्तो के अमिट प्रभाव का यही कारण है।

सभी सन्त मत-सम्प्रदायो के झगडो मे धार्मिक भेद-भावो मे ऊपर उठे थे। उनके निकट हिन्दू-मुसलमान दोनो एक थे। मानवता ही उनका धर्म था। सन्त चंडीदास ने तो यहाँ तक कहा है कि 'सब के ऊपर मनुष्य सत्य है उसके ऊपर कुछ नहीं।' जिस समय हिन्दू और तुर्क के झगडे देश को झकझोर रहे थे। इन्हीं सन्तो ने घबराई हुई जनता को राहत दी थी। जो दिखावटी मतभेद थे उनकी धज्जियाँ उडायी थी और जो सनातन एकता थी उसको उभारा था।

इस पुस्तक मे कबीर, नानक, दादूदयाल, चैतन्य आदि महात्माओं के चरित्र और शिक्षाएँ पढने को मिलेगी। ये आपसी तनाव, गलत फहमी और सदेह को दूर करने मे--एक दूसरे को समझने मे—मदद देगी और जनमन को छूने वाली उस वाणी को हमारे सामने रखेगी जिसे सुनना समझना आज के लौकिक राज्य मे हर एक नागरिक का कर्तव्य है।

—सम्पादक

—०❀०—

विषय-सूची



रामानन्द

ईसा की आठवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक दक्खिनी भारत में जबरदस्त धार्मिक उथल-पुथल शुरू हुई। इससे पहले धर्म के मामलों में उत्तरी भारत ही अगुवा रहा था, पर अब दक्खिनी भारत में भी नया उजाला फैला और पन्द्रहवीं सदी तक धर्म-सम्बन्धी नए आन्दोलनों को जन्म देने का बडप्पन दक्खिनी भारत के ही [illegible] में रहा। इसका एक बडा कारण यह था कि दक्खिनी भारत में अरब व्यापारियों की तिजारत के साथ-साथ इसलाम धर्म के नये उसूल और सिद्वान्त भी प्रचलित हो रहे थे। शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बादित्य, वल्लभाचार्य और माधवाचार्य आदि हिन्दू महात्माओं और आचार्यों के पैदा होने से पहले दक्खिन में मुसलमान सूफियों और दरवेशों ने हिन्दुओं को जाति-भेद, ईश्वर और आत्मा, सम्बन्धी सवालों को नये ढग से सोचने का बढ़ावा दिया था। इसीलिए इसलाम और सूफियों के उपदेशों ने दक्खिन भारत के इन आचार्यों पर भी भारी असर डाला। रामानुजाचार्य तथा और आचार्यों के उपदेशों में ईश्वर के एक होने पर जोर तथा उसकी भक्ति और प्रेम में भरोसा और जाति-पॉति का ढीलापन आदि बातें इसलाम के साथ बहुत कुछ मिलती हैं।

इसलाम के सम्पर्क से हिन्दू धर्म में बल पानेवाली इस उदारता का निखरा हुआ स्वरूप हमें महात्मा रामानन्द के विचारो मे मिलता है। रामानन्द आजाद खयाल के आदमी थे, इसीलिए उन्होंने रामानुज के धार्मिक विचारो को ज्यो-का त्यो न रखकर एक नया लिबास पहनाकर जनता के सामने रक्खा। उन्होंने साफ-साफ बताया कि ईश्वर की भक्ति के मामले मे जाति-पाँति और ऊँच-नीच का भेद-भाव बेकार हैं। आदमी अपनी भक्ति से ऊँचा उठता है, जन्म और जाति से नहीं। यही नही, उन्होंने धर्म की इस लहर को उत्तरी भारत मे जाकर फैलाया और हर जाति के लोगो को अपने मत मे शामिल किया। उनके चेलो मे ब्राह्मणों के साथ-साथ जुलाहे, जाट, चमार और नाई भी थे। बनारस में मुसलमान फकीरो और सूफियो के साथ भी उनकी भेंट हुई। उनके चेलो मे कितने ही मुसलमान भी थे।

रामानन्द जी स० १३५६ के लगभग पैदा हुये थे। इनके पिता का नाम पुण्यसदन था और माता का श्रीमती सुशीला। इनका बचपन का नाम रामदत्त था, बाद मे गुरु-दीक्षा लेने के समय से वे रामानन्द कहलाने लगे। शुरू से ही वे ईश्वर-भक्त थे और धर्म के कामो मे बहुत रुचि दिखलाते थे। कहा जाता है कि आठ साल की उम्र मे ही उन्होंने कितनी ही धार्मिक पुस्तको को जबानी याद कर लिया था। बडे होकर उन्होंने राघवानन्द से दीक्षा ली और उनके शिष्य बने। राघवानन्द रामानुजाचार्य के धार्मिक विचारो के मानने-वाले थे। इसीलिए रामानन्द ने भी इन्ही विचारों को अपनाया। पर आजाद खयालो के सबब से रामानन्द का किसी मामले में अपने गुरु से मतभेद होगया और वे दक्खिन

भारत से उत्तर भारत में चले आए और बनारस में रहकर अपने धर्म का प्रचार करने लगे। रामानन्द ने परमात्मा के पाने के लिए भक्ति का मार्ग ही सही बताया। वे मुक्ति के लिए कर्म-काण्ड और ज्ञान आदि को अहमियत नहीं देते थे। वे चाहते थे कि मनुष्य अपने आपको भगवान् के भरोसे छोड़ दे और उसकी भक्ति मे लग जाए। वे आवागमन मे यानी मनुष्य के मरकर फिर जन्म लेने मे विश्वास करते थे। उनका विचार था कि आत्मा कभी नहीं मरती। वह मनुष्य के अच्छे-बुरे कामों के मुताबिक जन्म लेती रहती है। अगर कोई अच्छा काम करता है, तो उसका दूसरा जन्म अच्छा होता है, यदि बुरा काम करता है, तो उसका दूसरा जन्म बुरा होता है। जन्म और मौत के इस चक्कर से सदा के लिए छूटने के लिए मनुष्य को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। इसी भक्ति के सहारे मनुष्य अपनी आत्मा को परमात्मा से एक कर सकता है। यदि वह अच्छे कामों में लगा रहेगा और ईश्वर का ध्यान रक्खेगा तो उसमें और परमात्मा में कोई भेद न रह जाएगा, दोनों एक हो जायेंगे। इसी को मुक्ति कहते हैं। मुसलमान सूफी इसी को अल्ला होना या दुई के परदे का उठ जाना कहते हैं।

रामानन्द से पहले भी कुछ दूसरे हिन्दू महात्माओं ने इन्हीं उपदेशों का प्रचार भारतवर्ष मे किया था, पर वे जनता में इतना अधिक आदर नहीं पा सके जितना रामानन्द को मिला। इसके कई सबब थे। सबसे पहले तो रामानन्द जी ने ब्राह्मण होते हुए भी जाति-पाँति और ऊँच-नीच के बन्धन को ढीला कर दिया। इस कारण हर जाति के लोग उन्हें श्रद्धा और आदर की नजर से देखने लगे और उनके धर्म में

शामिल होने लगे। दूसरे उन्होंने यह बतलाया कि भक्ति करने के लिए यह जरूरी नही है कि काम-धन्धा और घर-बार छोड कर आदमी सन्यास ले ले। दुनिया मे रहकर भी अच्छे काम किए जा सकते है और अच्छी आदते अपनाई जा सकती हैं। हर एक आदमी यदि गुस्सा, लालच, घमण्ड और वासना छोड कर ईश्वर को सच्चे मन से प्रेम करे तो बिना जगल का रास्ता लिए ही परमात्मा मिल सकते हैं। रामानन्द जी के उपदेशो के इतने अधिक प्रचार का तीसरा कारण यह था कि उन्होंने अपने उपदेश सस्कृत भाषा में न देकर जनता की भाषा में दिए, जिससे साधारण जनता भी उनकी बात को आसानी से समझ सकी। वैसे रामानन्द जी सस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे और उन्होंने सस्कृत मे किताबें भी लिखी थीं पर उन्होंने अपने चेलों को भाषा ही मे धर्म प्रचार करने की सलाह दी।

रामानन्द जी के इन उदार और समझदारी-भरे विचारो का यह असर हुआ कि पन्द्रहवीं सदी में कितने ही ऐसे महात्मा रोशनी में आये जिन्होंने जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद-भाव को चुनौती देते हुए ईश्वर की सच्ची भक्ति और मानव-धर्म का प्रचार किया। इन सन्तो मे सभी जाति और धर्मों के आदमी थे। कहा जाता है कि रामानन्द जी ने मुसलमानो को उपदेश देते हुए कहा था--

'परमात्मा सिर्फ मुसलमानों का ही नहीं है, सारी दुनिया का है। ईश्वर एक है जो सब जगहों पर और सबके दिलो में निवास करता है। 'भाइयो ! जब पैदा करनेवाला, पालनेवाला और मारनेवाला एक परमात्मा है और उसी एक को सब

अनेक नामों से याद करते हैं तब पूजा और भक्ति के ढंगों में भेद होने के कारण ही दूसरे धर्म के लोगों पर क्यों जुल्म किये जाएँ।'

उनके इस उपदेश का असर गयासुद्दीन तुगलक पर भी पड़ा और उन्होंने शाही फरमान लिखवाकर हिन्दुओं पर होने वाले जुल्म बन्द कराये। इस प्रकार हम देखते हैं कि जाति पाँति के भेद भाव को दूर करने और हिन्दू मुसलमानो को एक दूसरे के नजदीक लाने मे रामानन्द ने बहुत बड़ा काम किया।



नामदेव

दक्खिन भारत मे फैली हुई धार्मिक लहर का असर महाराष्ट्र पर भी पडा। तेरहवी सदी मे वहॉ एक नया धार्मिक आन्दोलन जोर पकडने लगा। इस आन्दोलन की शुरूआत भी हिन्दू-मुसलमानो को एक-दूसरे के पास लाने और ऊँच-नीच के भेद-भाव को दूर करने के लिए हुई थी। नये धर्म-प्रचारकों ने लोगो को यह उपदेश देना शुरू किया कि राम और रहीम को एक समझो, जाति-भेद को ढीला करो, प्रेम और दया को फैलाओ और एक ईश्वर में विश्वास करो। महाराष्ट्र के इन सुधारको मे नामदेव का नाम सबसे पहले आता है। वे महाराष्ट्र के पहले सन्त थे जिन्होने लोगों को धर्म और मजहब के मसलों को तग नजर से न देखकर उदारता के साथ देखने का सबक दिया, और जाति-पॉति के भेद-भाव को दूर कर ईश्वर की सच्ची भक्ति का रास्ता दिखाया।

नामदेव दमशेती नामक दर्जी के पुत्र थे और इनका जन्म हैदराबाद (दक्खिन) के नरसी-बमनी गॉव मे सन् १२७० ई० मे हुआ था। उनकी मॉ का नाम गोणाई था। नामदेव के कुलवाले धर्म में बहुत विश्वास रखते थे। इसका असर नामदेव पर भी पडा और वे लडकपन मे ही ईश्वर के असली भक्त हो गए। छोटी उम्र में ही जाति मे फैली रस्म के मुताबिक उनकी शादी गोविन्द सेठ सदावर्ते की लडकी राजाई के साथ होगई। जिससे उनके चार पुत्र हुए—नारायण, महादेव, गोविन्द और विट्ठल। इनको स्त्री और माता चाहती थी कि ये व्यापार मे लगे। लेकिन ये ईश्वर की भक्ति के व्यवसाय के अलावा

और कोई व्यवसाय करने को तैयार न थे। इसीलिए वे नरसी-बमनी गाँव छोड़कर पण्ढरपुर मे आ बसे। यहाँ गोरा कुम्हार, साँवता माली आदि भक्तों मे इनकी दोस्ती हो गई और ये अपना ज़्यादातर वक्त ईश्वर के कीर्तन और विट्ठल की प्रार्थना मे बिताने लगे। इन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर के साथ कितनी ही पवित्र जगहों की तीर्थ-यात्रा भी की, पर इनके जीवन का असली हिस्सा पंढरपुर ही में बीता। संत ज्ञानेश्वर के परलोक सिधारने के बाद वे उत्तर भारत में गए और पंजाब आदि मे भक्ति का प्रचार करने लगे।

नामदेव के मराठी भाषा मे लिखे अभंग बहुत मशहूर हैं। इन अभंगों के अलावा इन्होंने हिन्दी मे भी कितने ही भजन लिखे थे। इनकी सब रचनाएँ दो भागों मे बाँटी जा सकती है। पहले प्रकार की रचनाएँ शुरू की हैं जब नामदेव ईश्वर की सगुण उपासना (भगवान् के अवतार की पूजा) में श्रद्धा रखते थे और भगवान् की मूर्ति की पूजा करते थे। इन दिनों वे राम और कृष्ण को भगवान के रूप में ही देखते थे। वे लिखते हैं—

"दशरथ-राम-नन्द राजा मेरा रामचन्द।
प्रणवै नामा तत्त्व रस अमृत पाजै॥"

या

"धनि-धनि बनखण्ड वृन्दावना, जहँ खेले श्रीनारायना
बेनु बजावै गोधन चारै नामे का स्वामि आनन्द करै॥

दूसरी तरह की रचनाओं मे वे निर्गुण उपासक (रूपहीन भगवान् के उपासक) के रूप मे आते हैं। ईश्वर को सब जगह रमता हुआ देखने लगते हैं। कहा जाता है कि संत ज्ञानेश्वर ने उन्हें भक्ति के रास्ते से हटाकर ज्ञान का रास्ता दिखलाया। नामदेव पर उन दिनों नाथ-पंथ का पूरा-पूरा असर पड़ा।

उन्होने खेचरनाथ नामक एक नाथ-पंथी से गुरुदीक्षा भी ली थी। उन्होंने लिखा है—

"मन मेरी सुई, तन मेरा धागा।
खेचर जी के चरण पर नामा सिंपी लागा॥

खेचरनाथ ही ने नामदेव को मूर्त्ति-पूजा के भी विरोध मे उपदेश दिया था। उन्होंने कहा कि—

"पत्थर का देवता कभी नही बोलता, तो फिर वह हमारी इस जिन्दगी के दुःखों को कैसे दूर कर सकता है। पत्थर की मूर्त्ति को लोग ईश्वर समझ बैठते हैं, किन्तु सच्चा ईश्वर बिलकुल दूसरा ही है। यदि पत्थर का देवता हमारी इच्छाएँ पूरी कर सकता तो गिराने पर वह टूट क्यो जाता? जो लोग पत्थर के बने हुए देवता की पूजा करते हैं वे अपनी बेवकूफी से सब कुछ खो बैठते हैं।"

खेचरनाथ के इसी उपदेश के असर से नामदेव ने लिखा—

"किसू हूँ पूजूँ दूजा नजर न आई।
एकै पाथर किज्जे भाव। दूजे पाथर धरिए पाव।
जो वो देव तो हम भी देव। कहै नामदेव हम हरि की सेव॥"

नामदेव ने मूर्त्ति-पूजा के साथ ही-साथ जाति-पाँति का भी विरोध किया। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण पुरोहित ने उनके एक चेला चोखमेला को पण्ढरपुर के मशहूर मन्दिर मे इसलिए जाने से रोक दिया कि वह नीची जाति का था। चोखमेला ने उस समय उस पुरोहित से कहा था—

"जिस आदमी के दिल मे परमात्मा पर विश्वास है और मनुष्य के साथ प्रेम है, उससे जाति कभी न पूछो। ईश्वर अपने बच्चो से प्रेम और भक्ति चाहता है, वह उनकी जाति की परवाह नही करता।"

हिन्दू-मुसलमानों के आपसी मतभेद के विषय में नामदेव ने लिखा है—

'हिन्दू अन्धा तुरुको काना, दुवां ते ज्ञानी सयाना।
हिन्दू पूजे देहरा मुसलमान मसीद
नामा सोई सेविया जहँ देहरा न मसीत॥"

नामदेव के इन उपदेशों का यह नतीजा निकला कि महाराष्ट्र में धार्मिक पाखण्ड बहुत हद तक कम हो गए और मनुष्यों ने अपने विचारों और कामों में उदारता दिखलाना और आजादी बरतना शुरू कर दिया।



संत कबीर

उत्तरी भारत के धर्म प्रचारको और समाज सुधारको मे कबीर का नाम सबसे ज्यादा मशहूर है। वे रामानन्द जी के खास चेलो मे से थे। दरअसल में ईश्वर के प्रेम और भक्ति के जिस पौधे को रामानन्द ने उत्तर भारत की जमीन मे लगाया था: उसे सींच कर बडा करने का काम कबीर ने ही पूरा किया। इसलिए कहा जाता है—

'भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नव खण्ड ॥"

यही नही कबीर ने हिन्दू-मुसलमान और ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध कर अपने जमाने के समाज मे फैली हुई बुराइयो और धर्म के झूठे पाखण्डो का भी खंडन किया। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर देते हुए आदमी के असली महत्व को समझाया और दिखावटी रस्मो से दूर परमात्मा की सच्ची भक्ति का उपदेश दिया।

कबीर सन् १३९८ ई० मे बनारस में पैदा हुए थे। अपने जन्म और अपने चारो ओर के वातावरण के कारण भी वे हिन्दू मुस्लिम एकता के इस बडे काम को पूरा करने के भली प्रकार योग्य थे। कबीर ने अपनी जिन्दगी मे हिन्दू और मुस्लिम दोनो धर्मो और तहजीबो को देखा और समझा, इसलिए वे इन दोनों विरोधी धाराओं को एक दिशा की ओर मोडने मे बहुत हद तक सफल हो सके। कहा जाता है कि कबीर किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए थे। उस विधवा ने लोक-लाज के डर से इन्हें लहरतारा के तालाब के

पास फेंक दिया था। बनारस का एक मुसलमान जुलाहा नीरु उन्हें अपने घर उठा लाया था। उसी की स्त्री ने उन्हें पाल-पोष कर बड़ा किया। बनारस मे रहने के कारण उन्हें लडकपन से ही हिन्दू और मुसलमान विद्वानो और महात्माओं से भेंट करने का मौका मिला। उन्होंने चारों ओर घूम फिर कर भी साधु सन्तो का सत्सग किया। जौनपुर और झूसी आदि जगहो पर वे शेख तकी और दूसरे मुसलमान सूफियों और पीरों से भी मिले। इसीलिये बडे होने पर कबीर को हिन्दू और मुसलमान दोनों मतो के सिद्धान्तो की पूरी-पूरी जानकारी हो गई। आगे चल कर उन्होने अपने इस ज्ञान का इस्तेमाल हिन्दू-मुसलमानो को उपदेश देने मे किया।

अधिक पढ़ना-लिखना तो दूर, कबीर एक अक्षर तक नहीं जानते थे। उन्होने अपने आप कहा है—

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।"

पर बिना पढे-लिखे होते हुए भी सोचने समझने का गुण उनमें बहुत ज्यादा था। आजाद विचारों के होने के कारण उन्होने जो कुछ घूम-फिर कर और साधु-सन्तो के मेल-जोल मे सीखा और समझा, उस पर अपने खुद के विचारों की छाप लगाकर अपना बना लिया। इसीलिए यद्यपि उन्होंने मोटे-मोटे शास्त्रो और धर्म के पोथों को नहीं पढा था पर जिन्दगी की खुली हुई पुस्तक को जितनी गहराई और समझ के साथ उन्होने देखा उतना और किसी ने नही। यही वजह थी कि ज्ञान का जितना भण्डार उनके पास था, उतना उनके समय के किसी पढे-लिखे पण्डित के पास भी नहीं था। तभी तो आज भी साधारण जनता के लोग उनकी बडाई में गाते हैं—

"जो कुछ रहा सो जोलहा कहिगा,
अब जो कहै ते जूँठी।"

यही नहीं कबीर को खुद भी अपने इस ज्ञान की सच्चाई पर पूरा-पूरा भरोसा था। इसीलिए वे हिन्दू पण्डितों और मुसलमान मुल्लाओं को फटकारते हुए कहते थे—

"मैं कहता हूँ आँखिन देखी।
तू कहता कागद की लेखी॥"

कबीर इतने अधिक आजाद खयाल के आदमी थे कि उन्होंने अपने गुरू रामानन्द के धर्म सम्बन्धी उसूलों को भी ज्यो-के-त्यों नहीं अपना लिया। यह सच है कबीर पर रामानन्द जी के उदार विचारो और जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच के भेदभाव को दूर करने वाले और परमात्मा को भक्ति के रास्ते से पाने वाले उपदेशों का बहुत भारी असर पडा था। पर रामानन्द जी ने जहाँ साकार 'राम' यानी परमात्मा के देहधारी अवतार की पूजा पर जोर दिया, वहाँ कबीर ने निराकार ईश्वर की उपासना का पाठ पढाया। कबीर के राम सीता से विवाह करने वाले और रावण को हराने वाले दशरथ के पुत्र राम नहीं थे, वे तो देहरहित ईश्वर थे। उन्होने कहा है—

"दशरथ कुल अवतरि नहिं आया, नहिं लका के राव सताया।
नहिं देवकी गर्भहि आया, नहीं यशोदा गोद खिलाया॥"

या

"दशरथ सुत तिहिं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥"

कबीर के यह राम हिन्दुओं के ही राम नहीं हैं, सब जातियों और धर्मों के राम हैं। ये राम सब जगह हैं। इनको ढूँढ़ने के लिए मन्दिर और मसजिद जाने की जरूरत नहीं।

"मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥
खोजो होय तो तुरते मिलिहो, पलभर की तालास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वासों की स्वाँस में॥"

यही नहीं, इन 'राम' के पाने के लिए रस्म-रिवाज, और बाहरी दिखावटों की जरूरत नहीं, वे तो प्रेम और भक्ति के सहारे सरलता से मिल सकते हैं—

'और कर्म सब कर्म है भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहे कबीर पुकार के भक्ति करो तज धर्म॥

और ईश्वर की यह भक्ति सब के लिए खुली हुई है। वह किसी खास जाति और आदमी ही की बपौती नहीं है—

प्रेम न बाड़ी ऊपजे प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ ले जाय॥"

एक ही ईश्वर में भक्ति रखने के कारण कबीर जी ऊँच-नीच और हिन्दू-मुसलमान के भेद भाव के विरोधी थे। वे कहते थे ब्राह्मण और शूद्र हिन्दू और मुसलमान में कोई अन्तर नहीं। सब मनुष्य के रूप है और सभी एक ही ईश्वर के बन्दे हैं—

"एक जोत ही ते सब उपजा कौन ब्राह्मण कौन सूदा।"

और

"कहैं कबीर एक राम जपु रे, हिन्दू तुरक न कोई।"

उन्होंने यह भी बताया कि राम और राम रहीम में कोई अन्तर नहीं; महादेव और मुहम्मद एक ही हैं। परमात्मा सब का एक है, उसीने हिन्दू को जन्म दिया है, उसीने मुसलमान को—

"भाई रे दुई जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गहना, या में भाव न दूजा।
कहत सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा॥

वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए।
को हिन्दू को तुरक कहावे, एक जिमी पर रहिए॥
वेद किताब पढे वे कुतुबा, वै मुलवा वै पाडे।
बेगर बेगर नाम धराये एक मिट्टी के भॉडे॥
कहहिं कबीर वै दूनों भूले, रामहिं किनहु न पाया।
वै खस्सी वै गाय कटावे, वादिहि जन्म गमाया॥"

एक दूसरे जगह हिन्दू-मुसलिम एकता पर जोर देते हुए वे लिखते हैं—

"हिन्दू कहै राम मोहिं प्यारा, तुरक कहैं रहिमाना।
आपस मे दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना॥"

कबीर अपने को किसी खास जाति और धर्म के मानने वाले नहीं समझते थे। उन्होंने तो अपने को एक मनुष्य ही के रूप मे देखा—

"हिन्दू कहूँ तो मै नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पॉच तत्त का पूतला, गैबी खेले माहिं॥"

कबीर ने हिन्दू और मुसलमानो के आपसी भेद-भाव के साथ-साथ उनके धर्म मे फैली बुराइयों और बनावटी रस्म-रिवाजो की भी घोर निन्दा की है। उन्होंने हिन्दुओ की उनके जाति-पॉति मूर्ति-पूजा, अवतारो में विश्वास और छुआ-छूत आदि के लिए आलोचना की और मुसलमानो की उनके हज्ज, रोजे और निमाज आदि के लिए। कबीर ने हिन्दू मुसलमानो की इन दिखावे की रस्मो का बहुत मजाक उडाया है। वे कहते हैं—

"दुनिया कैसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै, जेहि का पीसा खाय॥"

× × × ×

"पाहन पूजे हरि मिले तो मै पूजूॅ पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय ससार॥"

× × × ×

"दिन भर रोजा रहत हैं राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुदी खुदाय॥"

× × × ×

"ककर पत्थर जोरि कर मसजिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बाँग दे बहरा हुआ खुदाय॥'

× × × ×

"माला तो कर मे फिरे जीभ फिरे मुख माँहि।
मनुआ तो चहुँ दिशि फिरै यह तो सुमिरन नाहि॥"

मनुष्यो मे फैली हिमा और मारकीट की निन्दा करते हुये वे लिखते हैं—

"बकरी पाती खाति है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल॥'

इस प्रकार कबीर ने भिन्न-भिन्न मतों में फैले बुरे रिवाजों की चर्चा करके मनुष्यो को दुनिया के सभी जीवो पर दया रखने और ईश्वर की भक्ति करने का पाठ पढ़ाया। अपने उपदेशों को साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होंने अपनी साखियों में जनता ही की भाषा का इस्तेमाल किया। उनका खयाल भी था कि सर्व-साधारण की भाषा से ज्यादा धनी और कोई भाषा नहीं है और यही भाषा देश की असली भाषा है। उन्होंने लिखा है—

"सस्किरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।

ताज्जुब है कि जो बात कबीर ने आज के साढे पाँच सौ साल पहले जानी वह हमारे जमाने के समझदार आदमी आज भी नहीं समझ पाये।

कबीर के सब उपदेश 'बीजक' नामक पुस्तक मे इकट्ठे किये गये हैं। यह उपदेश उनके मरने के बाद, उनके चेलों ने इकट्ठे किये थे। बीजक के तीन भाग हैं। साखी, सबद और

रमैनी । इनके अलावा कुछ हाथ लिखी किताबें और हैं, पर इनमे लिखे उपदेश कबीर के ही हैं, इसमे शक है ।

मनुष्य की भलाई के लिये एक से धर्म का प्रचार करने वाले इस महान सन्त की मृत्यु १५१८ ई० मे मगहर में हुई । कहते हैं अपनी मौत से पहले कबीर जानकर मगहर गये थे । वे हिन्दुओं के बीच में फैले हुए अन्ध विश्वासों का खण्डन करना चाहते थे और जताना चाहते थे कि बनारस मे मर कर ही वैकुण्ठ नहीं मिलता और न ही मगहर में मरने से कोई गदहे ही का जन्म लेता । ईश्वर के भक्त चाहे जहाँ मरे, ईश्वर के प्यारे ही रहते है । उन्होंने कहा—

"क्या काशी क्या ऊसर मगहर राम हृदय बस मोरा ।
जो काशी तन तजे कबीरा राम ते को न निहोरा ॥"

कहा जाता है कि कबीर के मरने के बाद उनके हिन्दू और मुसलमान चेलों में झगड़ा हुआ । हिन्दू उन्हे हिन्दू कहते थे और जलाना चाहते थे, मुसलमान उन्हें मुसलमान मान कर दफन करना चाहते थे । इस झगडे के समय कबीर की लाश यकायक ही गुम गई और उसकी जगह पर फूल बच रहे जिन्हें हिन्दू और मुसलमान चेलों ने आपस में बाँट लिया आज भी मगहर में एक समाधि और एक मकबरा बना हुआ है । भारत में ऐसा आदर 'नानक' को छोड कर किसी और धर्म प्रचारक को नहीं मिला ।



गुरु नानक

सत कबीर की तरह गुरु नानक ने भी जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद-भाव का खण्डन करके एक ईश्वर की सच्ची भक्ति पर जोर दिया। उन्होंने भी मनुष्यो की भलाई के लिए उनके दिलो मे प्रेम, भाइचारे और बराबरी के भाव भरे। जिस प्रकार चैतन्य ने उत्तर भारत के बीच के सूबो में फैली हुई धर्म की लहर को पूरब के सूबो—बगाल, बिहार, उडीसा—मे बहने का मौका दिया था, उसी प्रकार नानक ने उसका रुख पश्चिम के सूबो की ओर मोडा। नानक के पैदा होने से पहले ही पजाब मे मुसलमान धर्म का असर बढ़ गया था। जहाँ हिन्दू धर्म मे बहुत से देवी देवताओ की पूजा को अच्छा समझा जाता था, वहाँ मुसलमान धर्म में एक ही ईश्वर की पूजा पर जोर दिया गया था। इसीलिए बहुत से हिन्दू अपनी इच्छा से भी मुसलमान धर्म की ओर खिंच रहे थे। इसके साथ ही हिन्दू और मुसलमानो में आपस के भेद-भाव भी बढ रहे थे। जरूरत इस बात की थी कि कबीर की तरह कोई महात्मा पैदा हो जो दोनो मतो के गुमराह आदमियो को समझाये कि ईश्वर एक है और हिन्दू-मुसलमान सभी उसके बन्दे हैं, इस-लिए सभी बराबर है। यह जरूरत नानक जी के पैदा होने से पूरी हुई।

नानक जी १४६९ ई० मे लाहौर से ३० मील दूर तलवण्डी नामक गाँव मे पैदा हुए थे। इनकी माता का नाम तृप्ता था और पिता का नाम कालूचन्द वेदी। उनके पिता जाति के खत्री थे।

और महाजनी करते थे। बचपन से ही नानक का धर्म के कामों और अच्छे आचारो की ओर झुकाव था। कहते है छोटी उम्र ही मे वे पहुँचे हुए फकीरो जैसी बाते करते थे। वे ज्यादातर ईश्वर के ध्यान में डूबे रहते और साधू और फकीरो के माथ उठते-बैठते। जो कुछ पैसे मिलते साधुओ पर ही खर्च कर देते। उनके पिता को उनकी यह हालत देखकर डर लगता था कि कही वे बैरागी न हो जाएँ। इसीलिए अठारह-उन्नीस साल की उम्र ही मे उनका विवाह गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की लडकी सुलक्षणी से कर दिया। सुलक्षणी से इनके श्रीचद और लक्ष्मीचद दो पुत्र हुए। गृहस्थी मे फँस जाने पर भी नानक जी का धर्म की ओर झुकाव कम नहीं हुआ। उनके पिता ने उन्हे तरह-तरह के रोजगारों में लगाना चाहा, पर दुनिया के कामो मे उन्होने ज़रा भी मोह न दिखाया। कहते हैं एक बार इनके पिता ने इन्हें रोजगार के लिए बीस रुपये दिए, इन्होने वे रुपये साधुओ और गरीबो मे बाँट दिए। इनके पिता इस पर बहुत नाराज हुए और उन्होने इन्हे सुलतानपुर नामक गाँव में अपनी पुत्री नानकी के यहाँ भेज दिया। कहते हैं गुरु नानक को 'नानक' नाम अपनी बहिन से ही मिला था। सुल्तानपुर में वे नवाब दौलतखाँ के मोदीखाने मे नौकर हो गए। जब तक नौकरी की अपना काम बडी लगन और होशियारी के साथ किया और कमाये हुए धन का सबसे बडा हिस्सा साधु-सन्तो की सेवा मे लगाया। कहा जाता है कि वे दिन भर काम करते थे और रात को गीत बनाकर गाया करते थे। इनका मरदाना नाम का एक मुसलमान साथी था, जो तालवण्डी से आया था। नानक के गीतो के साथ मरदाना रबाना बजाया करते थे। आगे चलकर मरदाना उनके खास चेलो में से हुए।

कहते है एक बार बेन नदी में नहाते समय इन्हें आत्म-बोध हुआ और इन्होंने ईश्वर के दर्शन किए। उस समय ये तीस वर्ष के थे। तभी से ये नौकरी और घर-बार छोडकर अपने साथी मरदाना के साथ दूर-दूर के मुल्को में घूमने फिरने के लिए निकल पडे। वे लङ्का, ईरान, अरब आदि मुल्कों मे गए। उन्होंने पानीपत के शेख शरफ, मुलतान के पीरो, बाबा फरीद के वारिश शेख इब्राहीम आदि सूफियों के साथ बहुत दिनो तक धर्म के मामलो पर चर्चा की। वे बनारस में सन्त कबीर से भी मिले और कई दिनो तक उनके पास रहकर ज्ञान की चर्चा करते रहे। मुसलमान सूफियों और हिन्दू सन्तो के असर मे इन्होंने भी एक ही ईश्वर की पूजा पर जोर दिया और हिन्दू-मुसलमानो को आपसी मत-भेद भूलकर एक ही परमात्मा से सच्चा प्रेम करने का उपदेश दिया। नानक के मत मे भी हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हुए। नानक मक्के भी गए और वहाँ पर मोहम्मद साहब की तरह एक ईश्वर या खुदा की भक्ति का प्रचार किया और अपने को उसका 'खलीफा' बताया—

"ला इलाह इल्लल्लाह, गोविन्द नानक खलफल्लाह।"

यानी "'अल्लाह' एक है, वही गोविन्द हैं, नानक उसका खलीफा है।" नानक के चेलो ने आगे चलकर नानक के मत को 'सिख' मत का नाम दिया और उनके धर्म सम्बन्धी उसूलों और सिद्धान्तो को सवत् १६६१ मे 'ग्रन्थ साहब' में इकट्ठा किया।

नानक ने भी जाति-पाँति के भेद-भाव, मूर्त्ति-पूजा, बहुत से देवताओं की पूजा और जादू टोना आदि की निन्दा की और उनका घोर विरोध किया। "पर नानक कबीर की तरह

अक्खड नही थे, इसीलिये उनके उपदेशो मे दया और उदारता बहुत पाई जाती है। नानक ने भी ईश्वर के पाने के लिए घरबार छोडकर जगल की राह लेना जरूरी नही समझा। उन्होंने ईमानदारी, सदाचार, दान-दया और सयम पर अधिक जोर दिया। सदाचार के बारे मे लिखते हुए वे कहते हैं—

"दया को अपनी मसजिद बना, सच्चाई का मुसल्ला बना, इ साफ को अपनी कुरान बना, बिनय को खतना समझ, सुजनता का रोजा रख, तब तू सच्चा मुसलमान होगा। नेक कामो को अपना कावा बना, सच्चाई को अपना पीर बना, परोपकार को कलमा समझ, खुदा की मरजी को अपनी तसवीह, तब ऐ नानक, खुदा तेरी लाज रक्खेगा।"

नानक ने हिन्दुओं को भी ऐसा ही उपदेश दिया था। हिन्दू-मुसलमानो के आपसी झगड़ों का विरोध करते हुए उन्होने लिखा है—

"बन्दे इक खुदाय के हिन्दू मूसलमान
दावा राम रसूल कर, लडदे बेईमान।

× × × ×

"ना हम हिन्दू न। मूसलमान,
दोनो बिच बसे शैतान।"

× × × ×

"हिन्दू जपते राम राम, मूसलमान खुदाय,
इक्को राम रहीम है, मन मे देखो लाय।"

जाति-पॉति की निन्दा करते हुये वे लिखते हैं—

"जोर न कीजे किसी पर, उत्तम मवम न कोय,
हिन्दू मुसलमान नू दोहॉ नसीहत होय।

× × × ×

'नीचॉ अन्दरनीच जात नीचे हो अत नीच,
जित्थे नीच सम्हालिए, उत्थे नजर तेरी बख्शीश।"

यानी "किसी पर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए, कोई ऊँच नीच नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों को यही नसीहत है।"

"ईश्वर की बखशीश उन्ही को मिलेगी जो नीचों मे भी नीच को, और सबसे गिरे नीच को अपनाते है।"

इस प्रकार नानक ने सब तरह के मतभेदों को दूर कर सदाचारी आदमी बनने और एक ईश्वर की भक्ति करना ही मनुष्य का असली धर्म बताय। उनके उपदेश भी कबीर के उपदेशो की तरह जनता की भाषा में थे। उनमें सस्कृत, फारसी और अरबी तीनों भाषाओं के शब्दों की भरमार थी। इसीलिए उनके उपदेश हिन्दू-मुसलमानों को एक समान प्यारे थे। नानक का परलोकवास १५३८ ई० में जलधर के कर्त्तारपुर नामक जगह पर हुआ। कबीर की तरह उनकी याद में भी हिन्दुओ ने समाधि बनाई और मुसलमानों ने मकबरा। ये दोनों इमारते बाद मे रावी की बाढ में आकर बह गई। पर नानक की याद हमारे दिलों से नहीं धुल सकती। नानक अमर हैं और जब तक मनुष्य जाति जीवित रहेगी, नानक भी जीवित रहेंगे।



चैतन्य

सोलहवीं सदी के महात्माओं में चैतन्य ने बहुत ख्याति प्राप्त की थी। वे एक मशहूर धर्म-प्रचारक, सुधारक और साधक थे। चैतन्य के पैदा होने से पहले बंगाल में जाति-पाँति और ऊँच-नीच का भेद-भाव बहुत बढ़ गया था। नीची जाति के लोग ब्राह्मणों के ढोंगों और पाखण्डों के नीचे बुरी तरह से पिस रहे थे। ईश्वर की पूजा को ब्राह्मण लोग अपनी ही बपौती समझते थे और नीची जाति के आदमियों के लिए उसके दरवाजे बन्द कर रक्खे थे। चारों तरफ़ जादू-टोना, कर्म-काण्डों और अन्ध-विश्वासों का बोलबाला था। जब भारतवर्ष में धर्म के नाम पर यह सब पापाचार फैल रहे थे, तभी चैतण्य ने जन्म लेकर मनुष्यों को ईश्वर की असली भक्ति और एक दूसरे से प्रेम करने का पाठ पढ़ाया।

चैतण्य १४८५ ई० में पश्चिमी बंगाल के नदिया नामके गाँव में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शचीदेवी था। बचपन में उनके कई नाम थे। उनका जन्म का नाम विश्वम्भर था। पर वे निमाई पण्डित भी कहलाते थे और बहुत गोरे होने के कारण "गौराङ्ग" (गोरे शरीर वाले) के नाम से भी पुकारे जाते थे। वे शुरू ही से पढ़ने लिखने में बहुत तेज और अकलमन्द थे। उन्होंने संस्कृत की एक पुस्तक 'न्याय शास्त्र' पर बहुत अच्छी टीका लिखी थी। इनके एक साथी ने भी इसी पुस्तक पर एक अपनी खुद की टीका लिखी थी, पर उसे डर था कि चैतन्य की पुस्तक के प्रचार होने से उसकी किताब की कदर

घट जाएगी। अपने साथी को दुःखी देखकर चैतन्य ने अपनी टीका गङ्गाजी मे बहादी। बचपन से ही वे इसी तरह के त्यागी और दयावान आदमी थे। कहा जाता है कि इनके दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी लक्ष्मीदेवी के मरजाने के बाद इन्होने दूसरा विवाह विष्णुप्रिया के साथ किया था। चैतन्य के घर वाले बहुत गरीब थे, इसीलिए घर का खर्च चलाने के लिए चैतन्य ने एक पाठशाला खोल ली और छोटे-छोटे लडको को पढ़ाने लगे। पर यह काम बहुत दिन तक न चल सका। वे एक बार अपने पिता का श्राद्ध करने के लिए गया गए। गया में उनकी जान-पहिचान ईश्वरपुरी नाम के एक वैष्णव धर्म के मानने वाले वैरागी मे हुई। इस सन्यासी से उन्होने राधा-कृष्ण के जीवन का हाल सुना और तभी से उनमें ज्ञान की जगह भक्ति की भावना जग उठी। कहा जाता है कि वे राधा-कृष्ण के प्रेम मे मतवाले हो उठे और रात-दिन कृष्ण की ही रट लगाने लगे। बडी मुश्किल से उन्हें उनके गॉव नदिया वापस लाया गया। पर घर लौटकर भी उनके राधा-कृष्ण के प्रेम मे कमी नही आई।

२४ साल की उम्र में उन्हाने केशव भारती नाम के एक सन्यासी से सन्यास की दीक्षा ले ली और घर-बार छोड कर राधा-कृष्ण की भक्ति का प्रचार करने के लिये निकल पडे। इन्होने सन्यास इसलिए नही लिया था कि वे परमात्मा की भक्ति के लिये घर-बार छोडना जरूरी समझते थे। सन्यास तो उन्होंने बनारस के हिन्दू पण्डितों पर असर डालने और उन्हें भक्ति के रास्ते पर लगाने के लिए लिया था। वैसे उन्होंने अपने चेलों को घर बार छोडने का उपदेश कभी नही

दिया। सन्यास लेने पर वे कृष्ण चैतन्य या चैतन्य कहलाने लगे। सन्यास लेकर सबसे पहले वे पण्डितो के गढ जगन्नाथ पुरी पहुँचे। वहाँ जगन्नाथ की मूर्त्ति के देखते ही अपने भावो में वे इतने मस्त हो गये कि बेहोश होकर जमीन पर गिर पडे। उनकी अपार भक्ति को देखकर ज्ञान के रास्ते से ईश्वर को पाने मे विश्वास करने वाले कितने ही पण्डित उनके चेले हो गये। इन चेलों मे राजपडित का नाम बहुत मशहूर है। पुरी मे कृष्ण भक्ति का प्रचार करने के बाद चैतन्य दक्षिण भारत मे गये। अपने दो चेलो–अद्वैताचार्य और नित्यानन्द को उन्होंने सभी जाति और धर्म के लोगो मे कृष्ण भक्ति को फैलाने के लिए बगाल भेज दिया। दक्षिण भारत मे घूम फिर कर वे खुद कृष्ण की जन्म-भूमि व्रज की ओर चल पडे। इस यात्रा में अनेक साधुओ और फकीरो से उनकी मुलाकात हुई। वृन्दावन मे एक मुसलमान पीर से चैतन्य ने कुरान के उपदेश भी सुने। और मुसलमान फकीरो से भी उनकी भेट हुई। इस्लाम के सीधे उसूलो और बराबरी के आदर्श ने चेतन्य के उपदेशो पर बहुत असर डाला।

चैतन्य की सीधी सच्ची भक्ति से प्रभावित होकर सभी जातियों के लोग—हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र—उनके चेले हो गए। उनके मुसलमान चेलो मे रूप, सनातन और हरिदास भक्त बहुत मशहूर हैं। अपने तमाम चेलो में वे हरिदास पर सबसे अधिक प्रेम रखते थे। व्रज घूम घामकर चैतन्य फिर से पुरी चले गए। चैतन्य की जिन्दगी के अठारह साल पुरी ही मे बीते। वही अपनी भक्ति के भावो में मस्त होकर वे समुद्र को कृष्ण की यमुना समझकर उसमे कूद पडे और अपने भक्तों से सदैव के लिए अलग हो गए।

चैतन्य ने ही सबसे पहले कीर्त्तन करने के रिवाज को शुरू किया था। उनका विचार था कि प्रेम और भक्ति, भजन और नाच द्वारा आनन्द की एक ऐसी हालत पैदा हो जाती है जिससे परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। इसीलिए उन्होंने मनुष्यों को मण्डलियाँ बनाकर कीर्त्तन करने का उपदेश दिया। ईश्वर की भक्ति के साथ-साथ उन्होंने दया, अहिंसा, बराबरी, उदारता, परोपकार, प्रेम और भ्रातृ भाव का उपदेश दिया। प्रेम और समानता उनके मन के सबसे बडे उसूल थे। इसी कारण जन साधारण पर उनका बहुत असर पडा और उत्तरी भारत के हजारों लोग उनके चेले हो गए।

—०※०—

रैदास

ईश्वर की भक्ति पर कभी किसी खास जाति का अधिकार नही होता, यह हमे रैदास के जीवन-चरित्र से साफ-साफ मालूम होता है। रैदास यद्यपि जाति के चमार थे पर परमात्मा में बहुत गहरी भक्ति रखने के कारण वे एक बहुत बडे सिद्ध सत होगए। छोटी बडी सभी जातियो के लोगो ने उनसे गुरु-दीक्षा ली और उनके पन्थ को अपनाया। कहा जाता है कि ऊँचे कुल मे पैदा होने वाली रानी मीराबाई भी रैदास जी की शिष्या थी। आज भी गुजरात, विहार आदि कई सूबो मे लाखों आदमी रैदास जी के बताये हुये भक्ति के रास्ते पर चलते हैं और अपने को रैदासी कह कर पुकारते है।

कबीर की तरह रैदास भी रामानन्द जी के चेले थे। ऐसा मालूम होता है कि ये कबीर के बहुत पीछे रामानन्द जी के चेले हुए, क्योकि इन्होने अपने एक पद मे कबीर और सेनानाई दानो के तरने की बात कही है—

"नामदेव कबीर तिलोचन सधना सेन तरे।
कह रविदास सुनहु रे सतहु। हरि जिउ ते सबहि सरे॥"

पर ज़्यादातर लोग कबीर को रैदास के समय का ही मानते हैं। उनके मुताबिक रैदास जी बनारस में कई बार कबीर के सत्सग मे भी शामिल हुए। हो सकता है कि कबीर रैदास के सम्पर्क मे आए हो, पर उनसे पहले ही गति पागए हों। कबीर के समय के होने के कारण इनका जीवन-काल पन्द्रहवी सदी ठहरता है।

रैदास जी बनारस के रहने वाले थे और वे चमार घराने में ही पैदा हुए थे। रदास ने यह बात कई जगह लिखी है—

"ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।
हृदय राम गोविन्द गुन सार॥"

× × × ×

"जाति भी ओछी काम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु ऊँच कियौ है कह रैदास चमारा॥"

एक जगह पर उन्होने अपने विषय मे कहा है--

"जाके कुटुम्ब के ढेढ सब ढोर ढोवत फिरहिं अजहुँ बनारसी आस पासा।
आचार सहित विप्र करहिं डण्डवति तिनि तनै रविदास दासानुदासा॥"

रैदास जी शुरू से ही साधुओ और फकीरो की सेवा में अधिक समय बिताते थे। इनके पिता रघु ने इनकी आदतो से नाराज होकर इन्हें कामचोर समझकर घर से बाहर निकाल दिया और खर्च के लिए एक पैसा भी न दिया। पर रैदास ने साधु सन्तो की सेवा से अपना मुँह नही मोडा। वे अपनी सती स्त्री के साथ झोपडी मे रहते, जूते बनाकर अपने घर वालो को पालते पोसते और भगवान् के भजन मे मस्त रहते। उन्होने कभी किसी की निन्दा नही की और न किसी और की निन्दा की ही परवाह की। सदा सदाचार और अच्छे कामो ही मे अपने को लगाए रहे। १२० साल की उम्र में उनका परलोकवास होगया। उनके पथ वाले कहते हैं कि वे अपनी देह सहित ही गुम गए।

यद्यपि रैदास जी ने जहाँ तहाँ परमात्मा को उसके अवतारो के नाम से पुकारा है पर दरअसल वे भी कबीर की ही तरह निर्गुण रूप रहित ईश्वर की ही पूजा करते थे। उन्होने अपने भगवान् को दुनिया की सब चीजो में बसा हुआ देखा-

"थावर जगम कीट पतगा पूरि रह्यो हरिराई।"

अपने भगवान के रूप के विषय मे वे कहते है--

"गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके।"

रैदास जी की दो असली पुस्तकें हैं–'रविदास की बानी' और 'रविदास के पद'। इनके चालिस पद तो 'आदि गुरु-ग्रन्थ साहब' में दिए हैं। रैदास की कविता बहुत ही सरल भाषा हैं लिखी गई है। इनकी भाषा मे अरबी फारसी के शब्दो के सरल रूप भी बहुतायत से मिलते है। पर ज्यादातर वह जनता की भाषा है। उनके पदो मे पाई जाने वाली भक्ति का उदाहरण देखिए—

"प्रभु जी ! तुम चन्दन, हम पानी। जाकर अ ग अ ग बास समानी ।।
प्रभु जी ! तुम घन, वन हम मोरा। जैसे चितवत चद चकोरा ।।
प्रभु जी ! तुम दीपक, हम बाती। जाकी जोति बरै दिन राती ।।
प्रभु जी ! तुम मोती हम धागा' जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ।।
प्रभु जी ! तुम स्वामी, हम दासा। ऐसी भगति करे रैदासा ।।"

कितनी सरलता के साथ रैदास ने भगवान् के प्रति अपने प्रेम को प्रकट किया है। रैदास का जीवन साफ साफ बताता है कि भगवान के दरबार में जाति-पाँति की कोई कीमत नही– कीमत है भक्ति और अच्छे कामो की।



दादूदयाल

मानव धर्म का प्रचार करने वाले सन्तो मे दादू का स्थान बहुत ऊँचा है। यद्यपि उनके विचार कबीर के विचारो से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, और वे कबीर के चेले भी माने जाते है, पर उन्होने अपना एक अलग पथ भी चलाया था जो 'दादू पथ' के नाम से मशहूर है। दूसरे सन्तो की तरह उन्होने भी 'मूर्ति-पूजा', 'जाति-बन्धन' तीर्थ, व्रत और अवतार आदि के विरोध मे अपनी आवाज बुलन्द की। ये भी सब फिरको और मतो के आदमियो को प्रेम के एक मजबूत धागे मे बाँधना चाहते थे। इसीलिए इन्होंने जाति-पाँति से परे एक ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। इनके मत के माननेवालों मे भी हिन्दू-मुसलमान और ऊँच-नीच सभी जातियो के आदमी हैं।

दादू सं० १६०१ में गुजरात के अहमदाबाद नामक शहर में पैदा हुए थे। कुछ लोग इन्हें गुजराती ब्राह्मण मानते हैं और कुछ मोची या धुनिया। कबीर के जन्म की तरह इनके जन्म के बारे मे भी एक कथा मशहूर है। इस कथा के मुताबिक दादू बच्चे के रूप मे साबरमती नदी मे बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को मिले थे। इस ब्राह्मण ने इनको बडे लाड प्यार से पाला पोसा था। पर दादू शुरू से ही बडे भक्त थे, इसीलिए बडे होते ही साधुओ और फकीरो के सत्सग के लिए घर से निकल पडे। माता-पिता बडी कठिनाई से इन्हें ढूँढ़-ढाँढकर घर लौटा लाए और इनका विवाह कर दिया। पर कुछ ही साल बाद उन्नीस साल की

उम्र में वे फिर घर से निकल पड़े और जयपुर राज्य के साँभर गाँव में जा पहुँचे। यहाँ पर दादू ने अपने को छिपाने और अपनी जीविका चलाने के लिए रूई बीनने का काम शुरू किया। कुछ लोगों का मत है कि उनकी जिन्दगी का ज्यादा-तर समय जयपुर के नराना और भराना नामक जगहो में ही बीता। कुछ भी हो दादू ने अपने धर्म का अधिकतर प्रचार राजस्थान ही मे किया और वही पर स० १६६० में अपना शरीर छोडा।

दादू बडे दयालु स्वभाव के आदमी थे, इसीलिए लोग इन्हें 'दादूदयाल' के नाम से पुकारते थे। वैसे इनका बचपन का नाम महाबली था। दादू ने ईश्वर की भक्ति करने के लिए सन्यास लेना जरूरी नही बताया। वे खुद गृहस्थ थे और समझते थे कि बाल-बच्चो के बीच रहकर भी आदमी ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम रख सकता है। वैसे उनके पथ मे सन्यासी और गृहस्थ दोनो तरह के साधू हैं। बैरागी साधू दुनिया को छोडकर गेरुए कपडे पहनते हैं और गृहस्थ दादूपथी सफेद कपडे पहनते हैं और व्यापार करते हैं।

दादू ने भी कबीर की तरह हिन्दू मुसलिम एकता पर जोर दिया और बनावटी रीति-रिवाजो का विरोध किया है। वे कहते हैं—

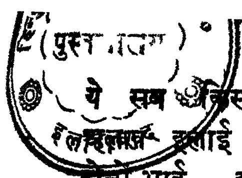
"सब घट एकै आतमा क्या हिन्दू मूसलमान।"

या,

"अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुरक भेद कछु नाहीं, देखों दरसन तोरा।"

या,

महम्मद किसके दीन मे, जबराइल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर को, कहिये एक अलाह॥



ये सब उसके है रहे, यह मेरे मन माँहि।
[illegible] भाई जगत गुरु, दूजा कोई नाँहि ॥
दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन है, हिन्दू मुसलमान ॥

पण्डित और मुल्लाओ के बनावटी रस्म-रिवाजों और पाखण्डो के बारे में दादू के विचार कबीर जैसे ही थे। उन्होने भी जाति पाँति, मूर्ति पूजा, तीर्थ-स्थान, हज आदि का मजाक उडाया है।

इनके पद भी जनता मे बहुत प्रसिद्ध थे, क्योकि इन्होने जनता की मिली जुली भाषा मे लिखा था। इनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी है और उसमे राजस्थानी तथा अरबी-फारसी के शब्दों की बहुतायत है। उन्होंने कुछ पद गुजराती राजस्थानी और पजाबी मे भी कहे हैं। कहा जाता है कि इनकी ख्याति और शुहरत देख कर सम्राट् अकबर ने स० १६४२ मे इन्हें फतेहपुर सीकरी में बुलाया और इनकी जाँच करने के लिए इनसे एक सवाल पूछा कि खुदा की जाति, अङ्ग; बजूद और रग क्या है। इस पर दादू ने जवाब दिया—

इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अङ्ग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रग।

मलूकदास

कबीर और नानक की तरह मलूकदास ने भी अपना एक अलग पथ चलाया था, जो मलूकदासी पथ के नाम से पुकारा जाता है। कबीर, नानक और दादू आदि सतो की तरह इन्होने भी जाति-पॉति, मूर्त्ति-पूजा, तीर्थों आदि मे जाने, और जादू-टोना मे विश्वास करने का विरोध किया है। वे बहुत दयावान थे और दूसरो की सेवा करने पर बहुत जोर देते थे। उन्होने भी सब धर्मो को मिलाने और हिन्दू और मुसलमानो के आपस के भेद-भाव को दूर करने की बहुत कोशिश की है।

मलूकदास अकबर के समय मे सन् १५७४ ई० में इलाहाबाद जिले के कडा नामक गॉव में पैदा हुए थे और औरगजेब के जमाने मे सन् १६८२ ई० में १०८ वर्ष की उम्र मे परलोक सिधार गए। इनके पिता का नाम श्री सुन्दरदास जी था। वे जाति के खत्री थे और कम्बलो का व्यापार करते थे। छोटी उम्र से ही मलूकदास के पिता ने इन्हें भी अपने व्यापार के काम में लगा लिया। पर मलूकदास जी का ध्यान व्यापार की तरफ न होकर धर्म के कामो की ओर ज्यादा था। वे लडकपन से ही गॉव मे आने वाले साधु, महात्माओ और फकीरो का सत्सग करते और उनकी सेवा करते। घर से जो कुछ मिलता, लेजाकर साधुओ को खिला देते। बडे होने पर इनका विवाह कर दिया गया। पर बच्चा पैदा होने के समय इनकी स्त्री और बच्चा दोनों ही मर गये। कुछ दिन बाद इनके पिता भी चल बसे। घर मे केवल मॉ रह गई। मलूकदास

जो अब आजाद थे। माँ की देख-रेख के बाद जो समय मिलता उसे ईश्वर के भजन और साधुओ की सेवा मे लगाते। उस समय उनकी उम्र सिर्फ सोलह साल की थी। कहते हैं कि एक बार वे कम्बलो का भारी बोझा सिर पर लादे लौट रहे थे। ज्वर और थकावट के मारे उनका बुरा हाल था। ठगो और बटमारो का अलग डर था। उस समय ईश्वर एक मजदूर की शक्ल मे उनके सामने आए और और उनका बोझा लेकर उनके घर पहूँचा आए। मलूकदास पर इस घटना का बहुत असर पडा। वे घर बार छोडकर ईश्वर की भक्ति का प्रचार करने के लिए निकल पडे। वे बगाल, विहार और जगन्नाथपुरी गये। पुरी मे इनकी यादगार मे एक मठ भी बनवाया गया। आज भी इनके मत के मानने वाले चेलो की गद्दियाँ कडा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नैपाल और काबुल तक में कायम हैं।

मलूकदास ने दया, प्रेम और समानता पर बहुत जोर दिया था वे कहा करते थे--

'मलुका सोई पीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जान ही सो फकीर बे पीर॥
पीर सबन की एक सी मूरख जानत नाहिं।
काँटा चुभै सो पीर है गला काट कोउ खाहिं॥
कुञ्जर चीटीं, पशू नर सब मैं साहब एक।
काटै गला खुदाय का करै सूरमा लेख॥
सब कोई साहब बन्दते हिन्दू और मुसलमान।
तिनको साहब बन्दते जिनका ठीक इमान॥"

दिल्ली के बादशाह औरगजेब को भी उन्होंने दयवान होने के लिए कहा था। औरगजेब पर उनके चमत्कार और करिश्मों

का बहुत असर पडा। उन्होने मलूकदास से उपदेश देने को कहा। इस पर मलूकदास ने नीचे लिखा पद सुनाया—

"जिहि घट दया, तहाँ प्रभु आप।
अपना-सा दुख सबका जानै। ताके निकट न आवै पाप॥
तीरथ कोटि करै जो कोई। बिना दया सब निष्फल होई॥"

जाति-भेद, और धर्म-भेद के वे विरोधी थे। वे निडर होकर अपने उसूलो और विचारो का प्रचार करते थे। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, दोनो के धर्मों के बनावटी रीति-रिवाजों की उन्होने कडी निन्दा की है। वे सदैव दूसरो की भलाई मे लगे रहते थे। उन्होने सडको और आने जाने के रास्तो को सुधरवाया और नालो के बाँध बँधवाये। वे हमेशा विधवाओ, अनाथो, रोगियो और साधु-सन्तो को खाना और कपडा बटवाते रहते थे। उन्होने हिन्दू-मुसलमानो के भेदो को भुलाकर दोनो को एक समान समझा, इसीलिए उनके मत के मानने वालो मे हिन्दू-मुसलमान दोनो जातियों के आदमी है।

धर्म के बनावटी रीति-रिवाजो की निन्दा करते हुये उन्होंने कहा है—

"ना वह रीझै जप तप कीन्हे, ना आतम के जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना वह काय पखारे॥
दया करै धर्म मन राखै, गृह मे रहै उदासी।
अपना-सा दुख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी॥"

× × × ×

"आत्माराम न चीन्ह ही पूजत फिरै पखान।
कैसेहु मुक्ति न होयगी, कोटिन सुनहु पुरान॥
हम जानत तीरथ बडे तीरथ हरि की आस।
जिनके हिरदे हरि बसै कोटि तीरथ तिन पास॥
सन्ध्या तर्पण सब तजा, तीरथ कबहूँ न जाहुँ।
हर हीरा हिरदे बसहि, ताही भीतर न्हाहुँ॥

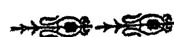
मका, मदीना, द्वारिका, बद्री और किदार।
बिना दया सब झूठ है, करै मलूक विचार ॥

एक दूसरी जगह उन्होंने लिखा है—

"कहाँ माला और कहाँ तसबीह। जागो और उनके भरोसे न रहो, कौन काफिर, और कौन म्लेच्छ। वही सन्ध्या और वही नमाज। यमराज कहाँ पर है और जिबराईल कहाँ पर है। खुदा ही आप काजी है, और कोई हिसाब नही रखता। वही सबके पाप पुण्य को समझता है और हिसाब रखता है। मलूकदास! तू कहाँ भूला है, राम और रहीम एक ही के नाम हैं।"

"दास मलूक कहा भरमो तुम,
राम रहीम कहावत एकै।"

कहा जाता है कि वे भगवान् का भजन करते करते परलोक सिधारे।



समर्थ गुरु रामदास

रामदास स्वामी का नाम शिवाजी के नाम के साथ जुडा हुआ है। शिवाजी गुरु रामदास के चेले थे। वे जो कुछ करते थे उसमें रामदास जी की सलाह जरूर ले लेते थे। कहते हैं एक बार रामदास स्वामी भीख माँगते हुए शिवाजी के दरबार मे जा पहुँचे। इस पर शिवाजी ने एक कागज पर यह लिख कर कि "आज तक मैने जो कुछ इकट्ठा किया है वह स्वामी जी के चरणो की भेंट चढाता हूँ", वह कागज स्वामी जी की झोली मे डाल दिया। दूसरे दिन शिवाजी

स्वय सन्यासी का भेष बना कर झोली ले भीख माँगने निकल पड़े। बाद में स्वामी जी के यह कहने पर कि "राज्य करना ही तुम्हारा धर्म है", घर वापस लौटे। रामदास जी शिवाजी को एक आदर्शवादी राजा के रूप मे देखना चाहते थे। इसलिए वे उन्हें हमेशा जनता की देख रेख और भलाई करने का पाठ पढाते रहते थे। कुछ लोगो का विचार है कि यदि स्वामी जी न होते तो शिवाजी भी इतने परोपकारी और धर्मात्मा राजा न बन पाते। महाराष्ट्र मे आज भी शिवाजी के साथ गुरु रामदास को जरूर याद किया जाता है।

रामदास जी स० १६६५ में गोदावरी नदी के किनारे बसे हुए जम्बू नामक गाँव मे पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम सूर्या जी पत और माता का नाम राणूबाई था। उनका बचपन का नाम नारायण था। बचपन मे वे बहुत खिलाडी थे और उनका ज़्यादातर समय एक पेड से दूसरे पेड पर कूदने और पहाडो पर तेजी से उतरने चढने मे बिताते थे। वैसे धर्म की ओर भी उनकी काफी रुझान थी। रामचन्द्र जी और उनके भक्त हनूमान जी की पूजा करने में उनका बहुत ध्यान लगता था। कहते है जब वे आठ ही वर्ष के थे तभी भगवान् रामचन्द्र जी ने उन्हे अपने दर्शन दिए थे। तभी से उनके मन मे बैरागियो की तरह के भाव पैदा हो गये थे, जिसे दूर करने के लिए उनके माता-पिता ने बारह साल की छोटी उम्र ही मे इनका विवाह करना चाहा। पर वे विवाह के समय विवाह मण्डप से उठ कर भाग गये और नासिक के पास की एक गुफा में जाकर तपस्या करने लगे। तपस्या के साथ-साथ उन्होंने रामायण, वेद, वेदान्त उपनिषद्,

गीता आदि हिन्दुओं की धर्म सन्बन्धी पुस्तकों को पढा और समझा। तीन साल की कठिन तपस्या के बाद वे तीर्थ यात्रा करने निकल पडे। उन्होने बनारस, अयोध्या, गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, द्वारिका, श्रीनगर, बदरीनारायण और केदारेश्वर आदि तीर्थ स्थानो का भ्रमण किया और रामचन्द्र जी की भक्ति का प्रचार किया। सं० १७०६ में शिवाजी को इन्होंने अपना चेला बनाया। इन्होंने शिवाजी को रामराज्य की तरह दया और प्रेम के सहारे अपना राज्य चलाने का उपदेश दिया।

कहते है इन्होने कितने ही तरह के चमत्कार दिखलाये थे। एक बार एक विधवा स्त्री को इन्होंने भूल से आठ बच्चों की माँ होने का आशर्वाद दे दिया। जब असलियत का पता चला तब उस स्त्री के मरे हुए आदमी को जीवित कर दिया। इस स्त्री के ही उद्धव गोसावी नाम के एक मशहूर महात्मा पैदा हुए। इन्होंने कितने ही अन्धों को आँखें दीं और कितने ही लगडे लूलों को ठीक ठाक किया।

स० १७३८ में इनका देहान्त होगया। इनकी मृत्यु भी राम-राम जपते हुए हुई थी। इनके उपदेशों और भजनों का दक्खिन भारत मे बहुत ज्यादा प्रचार है। इनकी पुस्तको मे 'दास बोध' और 'आत्माराम' बहुत मशहूर हैं। समर्थ रामदास ने भी एक पथ चलाया था। सितारा के पास सज्जनगढ मे इस पथ की खास जगह है। यहाँ समर्थ रामदास की समाधि और रामचन्द्र की मूर्ति भी है।

सन्त तुकाराम

दक्खिन भारत में सत तुकाराम के भजन और अभंग बहुत मशहूर है। उन्हें हर जाति के लोग गाते हुये दिखलाई पडते है। जनता मे इतने ज्यादा प्रचलित होने वाले और ईश्वर की भक्ति मे लिखे गये इन अभगो के कारण तुकाराम को अपने जीवन मे बहुत मुसीबतें झेलनी पडी थी। पाखंडी ब्राह्मण यह नही सह सकते थे कि धर्म के मामलो में उनके अलावा किसी और को भी आदर मिले। वे ईश्वर की भक्ति और धर्म के कामो पर केवल अपना ही ठेका समझते थे, इसीलिए तुकाराम ऐसे नीची जाति वाले आदमी के मुँह से ज्ञान और भक्ति भरे भजन निकलें और जनता उनका आदर करे यह सहन करने के लिए वे तैयार न थे। कहा जाता है कि इन ब्राह्मणो के नेता रामेश्वर भट्ट ने पहले तो तुकाराम को सरकारी हाकिमो द्वारा तरह-तरह के दुःख पहुँचाये और फिर उनसे अपने अभगो को नदी में बहा देने को कहा। तुकाराम सीधे-सादे आदमी थे। उन्होने ब्राह्मणों का कहना मान अपने भजनो को इन्द्रायणी नदी में बहा दिया, पर इससे उनके हृदय को बहुत चोट पहुँची। इसके बाद से उन्होंने जाति-पाँति, मूर्ति-पूजा, यज्ञ-हवन आदि का विरोध करना और ईश्वर की सच्ची भक्ति का प्रचार करना अपना ध्येय बना लिया। यद्यपि ब्राह्मणो ने तुकाराम के अभङ्गो को नदी में फिकवा दिया पर वे उन्हें हजारो आदमियों के दिलो से दूर नही करा सके। इसीलिए आज भी उनके अभङ्ग सर्व-साधारण के दिलों मे अमर हैं और उन अभङ्गों मे तुकाराम अमर हैं।

तुकाराम जी इन्द्रायणी नदी के किनारे देहू नामक गाँव में पैदा हुए थे। इनके माता-पिता का नाम नूनकाबाई

और बोलोजी था । वे जाति के कुनबी थे और उनका पेशा महाजनी था । तेरह वर्ष की उम्र में उनका विवाह रखुमाई के साथ कर दिया गया । पर रखुमाई की बीमारी के कारण तुकाराम के माता-पिता ने उनका दूसरा विवाह जिजाई से कर दिया । इनकी दूसरी पत्नी तेज आदत की थी, इसीलिए तुकाराम के घर में हमेशा झगडा चलता रहता था । तुकाराम की परेशानी उस समय और भी बढ गई जब इनके बड़े भाई बैरागी हो गए और उनके माता-पिता गृहस्थी का सब काम इनके ऊपर छोडकर ससार मे बिदा हो गए । पर तुकाराम का मन व्यापार में जरा भी नही लगता था । उनका स्वभाव ही व्यापार के काबिल न था । इसलिए लोग इन्हें धोखा देकर ठगने लगे । फिर दयावान होने के कारण जो रुपया कमाते थे गरीबों में बाँट देते थे । एक बार उन्होने एक गरीब बुढिया को व्यापार में कमाये २५०) दे दिए, जब कि उनके घर में खाने को एक दाना भी न था । एक दूसरी बार वे अपने खेत मे गन्नों का गट्ठर बाँध कर ला रहे थे । पर रास्ते मे बच्चों के माँगने पर उन्होने वे गन्ने बच्चो को दे दिए । केवल एक गन्ना बचा, उसी को लेकर घर चले आए और पत्नी को दे दिया । पत्नी को इस पर बहुत गुस्सा आया और उन्होंने वह गन्ना उठाकर उनकी पीठ पर दे मारा, जिससे गन्ने के दो टुकडे हो गए । तुकाराम ने इस पर हँसते हुए कहा—"तुम बडी देवी हो । हम दोनो के लिए, मुझे गन्ने के दो टुकडे करने पडते, तुमने बिना कहे ही कर दिए ।" उनकी सहनशीलता का इसी से पता चल जाता है ।

पर दया और व्यापार एक साथ नहीं चलते । तुकाराम को व्यापार मे नुकसान हुआ और उनका दिवाला निकल

ग। इधर उनकी बडी पत्नी और पुत्र भी चल बसे। दुःखी कर उन्होंने गृहस्थी का सब काम अपने छोटे भाई को सोप या और खुद भगवान् के भजन मे लग गए। नामदेव की ह वे भी विट्ठल के भक्त थे और चैतन्य की तरह करताल कर नदी के किनारे मौज मे आकर अपने बनाये हुए अभग ाते थे और मस्त होकर नाचते थे। हजारो आदमी उन्हें रे उनके अभग सुना करते थे। एकबार शिवाजी ने उन्हें पने यहाँ बुलाया, पर वे उनके दरबार मे नही गए; केवल छ अभग भेज दिए।

तुकाराम ने जहाँ जाति-पाँति और जादू-टोना की बुराई ी है वहाँ हिन्दू-मुसलिम धर्म को भी मिलाने की कोशिश ी। उनके एक अभग का उपदेश इस प्रकार है—

"जो 'अल्लाह' चाहता है ऐ मेरे बाबा! वही होता है। ब का बनाने वाला सबका बादशाह है। पशु और मित्र, गीचे और माला, सब जाते रहेगे। ऐ बाबा! मेरा चित्त मेरे "साहेब" पर लगा है। वही मेरा बनाने वाला है। मै मन के घोड़े पर सवार हूँ और आत्मा सवारी करती है। ऐ बाबा! अल्लाह का जिक्र करो सब उसी के रूप हैं। तुका कहता है, जो मनुष्य इस बात को समझे, वही दरवेश है।

"बडे नामों मे सबसे पहला नाम 'अल्लाह' है। उसे सदा दुहराते रहो, भूलो नही। सचमुच अल्लाह एक है, सचमुच नबी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ न मै हूँ, न तू है।"

